

## ध्वनिकार के पूर्ववर्ती आचार्य : दण्डी

डॉ० पुनम राय

प्रवक्ता, सेंट जॉन्स अकादमी, करछना, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

### सारांश

साहित्य-शास्त्र में जितनी कृतियाँ उपलब्ध हैं उनमें भरतकृत नाट्यशास्त्र प्राचीनतम है। नाम्ना यद्यपि यह नाट्यशास्त्र सम्बन्धी विषयों का ही ग्रन्थ प्रतीत होता है, किन्तु यह विविध कलाओं का आकार ग्रन्थ है। इतिहास में इस ग्रन्थ को इतना महत्त्व प्राप्त हुआ कि इसकी महिमा के प्रकाश में सजातीय ग्रन्थों की खद्योतमाला ऐसी निष्प्रभ हो गई कि काल की गति उन्हें सर्वथा विस्मृति के गर्त में धकेल गयी।

**कुंजी शब्द:** साहित्य-शास्त्र, नाट्यशास्त्र, दण्डी।

### प्रस्तावना

दण्डी के जीवन-परिचय के विषय में प्रामाणिक सामग्री का अभाव है। स्वर्गीय आचार्य विश्वेश्वर ने उन्हें भारवि का प्रपौत्र माना है और उनका समय बाण और मयूर के पश्चात् अर्थात् आठवीं शताब्दी स्वीकार किया है। दण्डी के विषय में अधोलिखित उक्ति है—

त्रयोऽन्यस्त्रयो वेदास्त्रयो देवास्त्रयो गुणाः।  
त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विभुताः॥

शार्ङ्गधन, जह्वण तथा अन्य सुभाषितकारों ने विज्जका नामक कवयित्री का यह श्लोक उद्धृत किया है—

नीलोत्पलदल श्यामां विज्जकां मामजानता।  
वृथैव दण्डिना प्रोक्तं सर्वशुक्ता सरस्वती॥

उसने काव्यादर्श प्रथम श्लोक के अन्तिम चरण का उल्लेख किया है। शारंगधर धनदेव कृत स्त्री कवियों की गणना को उद्धृत किया है, जिसमें विज्जका भी है। उपरोक्त श्लोक में अजानता शब्द से यह निष्कर्ष निकलता है कि दण्डी को उसका ज्ञान नहीं था और वह दण्डी की समकालीन नहीं थी। किन्तु उसका अर्थ यह भी हो सकता है कि दण्डी ने उसे प्रत्यक्ष नहीं देखा था किन्तु उसके श्याम वर्ण से अपरिचित थे। यदि यह निष्कर्ष निकाला जाये कि वह दण्डी की समकालीन, सम्भवतया अल्पव्यस्कामानी जा सकती हैं। राजशेखर ने उसका संस्कृत रूप विजया कर दिया और अन्य विद्वानों ने विद्या। अतः बहुत सम्भव है कि विज्जका और विजया एक ही हों। यदि इस बात को स्वीकार कर लिया जाये, तो सरस्वतीव श्लोक के आधार पर कहा जा सकता है कि विज्जका कार्णाटी (कर्णाटक की राजकुमारी या वहाँ की निवासिनी) थी। तथा उसने वैदर्भी रीति में काव्य लिखा जो कालिदास के समकक्ष है। किन्तु उनके द्वारा विरचित कोई काव्य अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ। विजया भट्टारिका चन्द्रगुप्त द्वितीय की महारानी थी, जो सत्याश्रय पुलकेशिन द्वितीय का ज्येष्ठ पुत्र तथा विक्रमादित्य का सहोदर था। यह उल्लेख नेरूर के दानपत्र जो शक सं० 581 (659 ई०) में लिखा गया था। कोचरिम् के तत्कालीन ताम्रपत्र में उसे विजयमहादेवी कहा गया है। ताम्रपत्र के आधार पर इनका समय 659 ई० मानना होगा और दण्डी को तदनुसार 660-680 ई० के बीच रखना होगा।

बहुत से विद्वान दण्डी का समय छठी ई० मानते हैं। मैक्समूलर (इण्डिया, व्हाट कैन इट टीच अस : प्रथम संस्करण पृ० 332), वैबर (हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर पृ० 232 टिप्पण), प्रो० मैकडोनल (हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर पृ० 434) तथा कर्नल जैकेब (जरनल ऑफ रो० ए० सो 1897 पृ० 284) अब अन्य सभी मत का परित्याग करके यही मानना चाहिए कि दण्डी का रचनाकाल 660 से 680 ई० है।

भामह के बाद दूसरे प्रधान आचार्य दण्डी को बलदेव उपाध्याय ने सप्तम शतक के उत्तरार्द्ध का आचार्य स्वीकार किया है, दण्डी भामह की भाँति अलंकार को ही काव्य का मुख्य तत्व मानते हैं, वैसे वे गुण का ही अधिक समर्थन करते हैं। रस के प्रति इनकी दृष्टि भामह से साम्य रखती है अर्थात् ये भी रसों को अलंकारों के भीतर समाहित कर देते हैं। फिर भी ये कविता में रसों के महत्त्व को स्वीकार करते हैं। ये गुणों को कविता का सार अथवा प्राण कहते हैं, स्वयं कवि होने के नाते रस के प्रति दण्डी की सहानुभूति है अतः रस विवेचन के क्षेत्र में ये भामह की भाँति अनुदार नहीं कहे जा सकते। काव्यादर्श के द्वितीय परिच्छेद में श्लोक 275 से 291 तक इन्होंने रसों के विवेचन में अधिक स्थान दिया है। इन्होंने काव्यादर्श में भरत-वर्णित आठ रसों के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। इनके उदाहरणों की मधुरता रस के प्रति आकर्षण का परिचायक है। गुणों के काव्य की आत्मा मानते हुए भी कवि होने के नाते वे रसों के महत्त्व को समझकर उन्हें गुणों के समान ही काव्य का आवश्यक अंग मानते दिखाई पड़ते हैं।

प्रेयः प्रियतराख्यानां रसवद्रसपेशलम्।  
ऊर्जास्विरूढाहङ्कार युक्तोत्कर्ष च तवज्यम्॥

उन्होंने बताया कि रसवत् रचना में माधुर्य गुण का समावेश रहता है। इन्होंने प्रकारान्तर से रस एवं गुणों के पारस्परिक सम्बन्ध को भी स्वीकार किया है। दण्डी ने काव्य के दो मार्ग माने हैं — वैदर्भ एवं गौड़। वे वैदर्भ मार्ग को अपनाकर श्लेष, प्रसाद, समता आदि दश गुणों को उसका प्राण मानते हैं। इसके अन्तर्गत मधुर गुण का सम्बन्ध रस से है।

अस्त्यनेको गिरां मार्गं सूक्ष्मभेदः परस्परम्।  
तत्र वैदर्भगौडीयो वप्येते प्रस्फुटान्तरो॥  
श्लेषः प्रसादः समता माधुर्यं सुकमारता।  
अर्थव्यक्तिरुदारत्वमोजः कान्ति समाधयः॥

मधुर गुण का सम्बन्ध रस बताते हुए दण्डी ने कहा है कि रसवत् वाक्य ही मधुर होता है अतएव रस एवं माधुर्य एक ही पदार्थ है। जिस शब्दार्थ जन्य आह्लादकता से सहृदयगण मत्त हो जाएँ उसे रस कहते हैं। इस प्रकार दण्डी माधुर्य को रस का स्थान देते हुए दिखाई पड़ते हैं।

मधुरं रसवद्वाचि वस्तुन्यपि रसस्थितः।  
येन माद्यन्ति धीमन्तो मधुनेव मधुव्रताः।।

दण्डी के अनुसार 'प्रत्येक अलंकार अर्थ में रस सिंचन' की क्षमता रखते हैं।

कामंसर्वोऽप्यलंकारो रसमर्थे निषिन्नचति।

दण्डी को रस प्रक्रिया का पूर्ण ज्ञान है। उन्होंने स्थायी भाव एवं रस के भी भेद को समझा है। इन्होंने रसवत् आदि अलंकारों के वर्णन में जो उदाहरण उपस्थित किये हैं, उनमें प्रायः सभी रसों एवं भाव आदि के स्वरूप प्रदर्शित किये गये हैं तथा रस के प्रति अपनी पूर्ण सहानुभूति प्रकट की है। विभाव, अनुभाव एवं संचारी से पुष्ट स्थायी भाव को ही रस मानकर दण्डी ने उदाहरण प्रस्तुत किये हैं—

इत्यास्य परां कोटिं रौद्रात्मतां गतः।  
इत्युत्साहः प्रकृष्टात्मा तिष्ठन् वीररसात्मना।।

दण्डी के उदाहरणों में रस-प्रक्रिया का पूर्ण वैभव दिखाई पड़ता है जो भरत के विवेचन से साम्य रखने वाला है। सभी रसों एवं भावों का उदाहरण उपस्थित कर भी दण्डी यह समझ नहीं पाते कि वे वस्तुतः रस का ही वर्णन कर रहे हैं। इसका कारण यह है कि वे युग की सामान्य विचारधारा से इस प्रकार प्रभावित हो चुके थे कि इन्होंने अलंकारों के अन्तर्गत ही रसों को अन्तर्भूत कर दिया। दण्डी के विवेचन पर भरत एवं भामह दोनों का संयुक्त प्रभाव है। रस को रसवत् अलंकार के भीतर मानने के कारण जहाँ वे भामह के निकट पहुँचते हैं, तो विभावादि का सम्यक वर्णन करने के कारण भरत की परम्परा को छू लेते हैं। रस का अलंकार के अन्तर्गत वर्णन कर के भी वे भरत के विपरीत नहीं सोचते और न भामह की भाँति मात्र विभाव को ही रस मानते हैं। कुल मिलाकर दण्डी का दृष्टिकोण भामह की भाँति रस के प्रति हठधर्मिता का नहीं है। वे रस के प्रति उदार दृष्टि रखते हैं इसका मुख्य कारण उनका रस सिद्ध कवीश्वर होना ही है।

### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. नाट्यशास्त्र, श्री बाबू लाल शुक्ल, शास्त्री चौखम्बा संस्कृत, सीरीज आफिस; वि०सं० 2029।
2. अभिनव भारती, अभिनवगुप्त, गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, बड़ौदा; 1963।
3. किरार्ताजुनीय, भारवि; चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस, 1952।
4. काव्यालंकार, श्री रामदेव शुक्ल, चौखम्बा-विद्याभवन, वाराणसी; 1967।
5. रस-सिद्धान्त, डा० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली; तृतीय संस्करण; 1974।
6. रस-सिद्धान्त स्वरूप विश्लेषण, आनन्द प्रकाश दीक्षित, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली; 1972।
7. रस-गंगाधर, चिन्मयी माहेश्वरी, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर-4; 1974।

8. रस-गंगाधर, पण्डितराज जगन्नाथ, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी; 1987।
9. काव्य-दर्पण, विद्या वाचस्पति पंडित रामदहिन मिश्र, ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना; 1973।
10. काव्यालंकार, भामह, बाल मनोरमा सीरीज, मद्रासा; 1956।
11. भारतीय साहित्य शास्त्र, पं० बलदेव उपाध्याय, नन्द किशोर एण्ड सन्स, वाराणसी; 1963।
12. काव्य-दर्पण, विद्या वाचस्पति पंडित रामदहिन मिश्र, ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना; 1973।
13. भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिनिधि सिद्धान्त, प्रो० राजवंश सहाय 'हीरा', चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी; 1967।
14. काव्यालंकार (नमिसाधु टीका सहित), रूद्रट, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी; 1966।
15. काव्यालंकार सार-संग्रह एवं लघुवृत्ति की व्याख्या, डा० राममूर्ति त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग; 1966।
16. काव्यालंकार, श्री रामदेव शुक्ल, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी; 1967।
17. श्रृंगाररस भावना और विश्लेषण, रमाशंकर जैतली, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर; 1972।